जाता है; **पार्थ**=हे अर्जुन; **न**=न तो; **च**=तथा; **तत्**=वह; **प्रेत्य**=परलोक में; **नो**=न; **इह**=इस लोक में (फलता है)।

अनुवाद

परन्तु हे अर्जुन! परब्रह्म में श्रद्धा के बिना किया जो कुछ भी यज्ञ, दान, तप आदि कर्म है, वह सब असत् है। उसका न इस लोक में और न परलोक में ही कोई फल होता है।।२८।।

तात्पर्य

भगवत्प्राप्तिरूपी दिव्य लक्ष्य के बिना यज्ञ, दान, अथवा तप आदि जो कुछ भी किया जाता है, वह सब व्यर्थ है। इस श्लोक में ऐसी क्रियाओं को **असत्** कहकर उनकी निन्दा की गयी है। सब कर्म कृष्णभावनाभावित होकर भगवत्प्रीति के लिए ही करने चाहिऐं। इस श्रद्धाभाव और ठीक मार्गदर्शन के अभाव में कुछ भी फल नहीं हो सकता। वैदिक शास्त्रों में श्रीभगवान् में श्रद्धाभाव का बड़ा माहात्म्य है। श्रीकृष्ण के तत्त्व को जानना वस्तुतः सम्पूर्ण वैदिक निर्देशों के अनुसरण का परम लक्ष्य है। इस सिद्धान्त का पालन किए बिना कोई सफल नहीं हो सकता। अतएव कल्याणप्राप्ति का सर्वोत्तम मार्ग सद्गुरु के आश्रय में जीवन के आदिकाल से ही कृष्णभावनाभावित कर्म के परायण हो जाना है। इससे सब प्रयास कृतार्थ हो जायेंगे।

बद्धावस्था में लोग देवताओं, प्रेतों, अथवा कुबेर आदि यक्षों की उपासना में आसक्त रहते हैं। सत्त्वगुण निःसन्देह रजोगुण और तमोगुण से उत्तम है; परन्तु जो सीधे-सीधे कृष्णभावनाभावित हो जाता है, वह इन तीनों ही गुणों से परे है। परमार्थ की एक क्रमिक पद्धति भी है परन्तु शुद्ध भक्तों के सत्संग से साक्षात् कृष्णभावना को अंगीकार कर लेना सर्वोत्तम है। इस अध्याय का भी यही कहना है। इस पथ में उन्नति के लिए सद्गुरु को खोजकर उनके मार्गदर्शन में शिक्षा ग्रहण करना आवश्यक है। तभी श्रीभगवान् में श्रद्धा होगी। यथासमय जब श्रद्धा परिपक्व हो जाती है, तो उसे भगवत्प्रेम कहते हैं। यह प्रेम ही जीव का परम लक्ष्य है। अतः सीधे-सीधे कृष्णभावना को अंगीकार कर लेना चाहिए। सत्रहवें अध्याय का बस यही सन्देश है।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे श्रद्धात्रयविभागयोगो नाम सप्तदशोऽध्यायः।।१७।।

इति भक्तिवेदान्त भाष्ये सप्तदशोऽध्यायः।।

श्रद्धा + ठीक मार्गदर्शन = सफलता
(शास्त्रविधि)